"तेरे घर की धुन"

(2:12–22)

दुखद कहानियां हमें भीतर तक परेशान करते हुए हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव डालती हैं। किसी प्रसिद्ध व्यक्ति या अपने सम्माननीय राज नेताओं पर अचानक नशे का सेवन करने, गैर कानूनी काम, अनैतिक आचरण या घरेलू हिंसा के आरोप लगने पर हम स्तब्ध रह जाते हैं। हमें लगता है कि क्या हम अपने जीवन–साथी, अपने बच्चों, अपने भाइयों या बहनों, यहां तक कि खुद अपने आपको भी जानते हैं! इसलिए, हमें उन लोगों के साथ विभिन्न परिस्थितियों का अनुभव होना आवश्यक है, जिन्हें हम अच्छी तरह से जानना चाहते हैं। डेटिंग पर जाने वाले यूनिवर्सिटी के छात्रों के साथ काम करते हुए मैं अक्सर उनसे कहता हूं कि जब वे आपस में मिलते हैं तो उन्हें एक दूसरे को जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में पति या पत्नी के रूप में देखना चाहिए। उन्हें एक दूसरे को जीवन में उस स्थिति के लिए देखना चाहिए जब जीवन में कोई कठिनाई न हो और तब भी जब जीवन में केवल दुख ही हों। उन्हें एक दूसरे को सफलता में साथ रहने और कुछ करने में असफल होने पर भी मिलकर जीवन बिताने के रूप में देखना चाहिए, क्योंकि किसी को अलग–अलग दृष्टिकोण से देखने का केवल यही ढंग है जिससे हम जान पाते हैं कि वह व्यक्ति वास्तव में कैसा है।

इस अध्ययन का भाग, यूहन्ना 2:12–22 हमें यीशु को एक और रूप में दिखाता है। इस बार वह ऐसी जगह पर है जो पहले से बड़ी, सुपरिचित, और काना में विवाह के दृश्य से अधिक व्यक्तिशून्य है। ये आयतें हमें यरूशलेम के मन्दिर अर्थात यहूदी विश्वास के गढ़ और उस स्थान की ओर ले जाती हैं जहां बाद में यीशु को क्रूस पर चढ़ाए जाने का दण्ड मिलना था। इस प्रतिकूल स्थिति में यीशु को देख और सुनकर हमें परमेश्वर का पुत्र होने का दावा करने वाले का एक और पहलू दिखाई देता है। इस स्थिति में जो कुछ हम देखते हैं उससे हम यीशु को पहले से अच्छी तरह जान पाते हैं।

हम उसका प्रबल क्रोध देखते हैं (2:12-16क)

ये बातें फसह के पर्व के आस–पास हुईं (2:13)। फसह का यह यहूदी पर्व उन तीन पर्वों में से एक था जिनमें हर वर्ष प्रत्येक यहूदी पुरुष को शामिल होना होता था। यह मूसा के समय इस्राएल के मिसर से छुटकारे को याद रखने के लिए और यहूदी लोगों को याद

दिलाने के लिए था कि वे एक जाति (कौम) कैसे बने। नगर में फसह के पर्व के दौरान अतिथियों के आने से यरूशलेम की जनसंख्या कई गुणा बढ़ जाती थी। लोग भीड़ से रोमांचित होते थे जिससे कई वर्ष बीतने पर फसह का यह दिन ऐसा समय बन गया था जब मसीह के आने की उम्मीदें बढ़ जाती थीं।[1] लोग एक दूसरे से पूछते थे "क्या मसीह इस वर्ष आएगा?" इसलिए फसह के दिन यह कल्पना करना आसान था कि वह आएगा!

यरूशलेम आने पर जो मन्दिर यीशु ने देखा था वह वास्तव में इस्राएल के इतिहास में तीसरा मन्दिर था। इससे पहले सुलैमान और जरुब्बाबेल ने मन्दिर बनवाए थे, हेरोदेस महान द्वारा बनवाने के कारण इसे हेरोदेस के मन्दिर के नाम से जाना जाता था। इस अवसर पर यीशु के मन्दिर में आने के समय इसे बनाते हुए पहले ही छयालीस वर्ष बीत चुके थे (2:20) और अगले पैंतीस वर्षों अर्थात 64 ईस्वी तक इसके पूरा होने की उम्मीद थी। मन्दिर की भूमि वास्तव में विशाल आंगनों और मन्दिर से जुड़ी दीवारों का एक विशाल क्षेत्र था।[2] मन्दिर में प्रवेश करने पर, पहला आंगन अन्यजातियों का था। इसमें कोई भी आ सकता था। इसके आगे स्त्रियों का आंगन था जहां केवल यहूदी लोग ही प्रवेश कर सकते थे। अगला द्वार इस्राएल के आंगन में जाने के लिए, जहां केवल यहूदी पुरुष ही जा सकते थे। अन्त में एक आंगन और था जहां केवल यहूदी याजकों को ही जाने की अनुमति थी। यह भाग भवन का वह स्थान था जिसके लिए हम में से अधिकतर लोग "मन्दिर" शब्द का इस्तेमाल करते हैं।

क्योंकि अन्यजातियों का आंगन मन्दिर में ऐसा स्थान था जहां कोई भी जा सकता था, इसलिए यह स्थान व्यापारियों और धन का लेन-देन करने वालों के लिए व्यापार करने का अड्डा बन गया था। दूरदराज से आने वाले आराधकों को बलिदान चढ़ाने के लिए पशु खरीदने होते थे, अत: वहां पर भेड़ों, कबूतरों और गायों को बेचने वाले बीस से अधिक आयु के प्रत्येक यहूदी पुरुष से मन्दिर के लिए कर देने की अपेक्षा की जाती थी जिससे मन्दिर की भूमि पर धन का लेन-देन करने वालों को व्यापार करने का अवसर मिल जाता था। इन सारी गतिविधियों से सम्भवत: मन्दिर के आंगन में काफी शोर शराबा और भीड़ रहती थी, लोगों को यह सब सामान्य गतिविधि के रूप में स्वीकार करना पड़ता था। यीशु का वहां आना ऐसे समय में हुआ।

यीशु ने मन्दिर में घूमते हुए वहां होने वाली गतिविधियों को अलग नज़रिये से देखा। यूहन्ना लिखता है कि उसने:

> रस्सियों का कोड़ा बनाकर, सब भेड़ों और बैलों को मन्दिर से निकाल दिया, और सर्राफों के पैसे बिखरा दिए, और पीढ़ों को उलट दिया। और कबूतर बेचने वालों से कहा; इन्हें यहां से ले जाओ: मेरे पिता के भवन को ब्योपार का घर मत बनाओ (2:15, 16)।

यह संकेत देते हुए कि यीशु बेईमानी के काम से क्रोधित हुआ था, मत्ती, मरकुस और लूका ने मन्दिर को शुद्ध करने की कहानी का बीच में उल्लेख कर संकेत दिया कि यीशु ने व्यापारियों के उस व्यवहार पर आपत्ति जताई थी जिससे उन्होंने मन्दिर को "डाकुओं की

खोह''[3] बना डाला था। परन्तु यूहन्ना ने संकेत दिया कि यीशु को मन्दिर में होने वाले *किसी* भी प्रकार के व्यापार पर आपत्ति थी। मन्दिर का नमूना प्रार्थना के घर अर्थात ऐसे स्थान के रूप में दिया गया था जहां सब जातियों के लोग आकर परमेश्वर की आराधना कर सकें। जो कुछ यीशु ने वहां देखा वह किसी आत्मिक निर्जन स्थान के बजाय एक व्यापारिक केन्द्र या मंडी जैसा था। स्थिति पर नियन्त्रण पाने तथा व्यापारियों और पशुओं को मन्दिर से भगाने के समय अवश्य ही उसका चेहरा आग बबूला और भयभीत करने वाला लग रहा होगा।

यीशु और पौलुस दोनों ने ही जीवन के ढंग के रूप में क्रोध करने को गलत बताया है।[4] परन्तु, कभी-कभी यीशु ने क्रोध किया, और उसका वह क्रोध बिना पाप किए था।[5] क्रोध के इन दो रूपों में क्या अन्तर है? स्पष्टतया एक तो ऐसा क्रोध है जो इन्सान के छोटेपन और असुरक्षा या विफलता की भावना से आता है। दूसरी ओर, ईश्वरीय क्रोध ऐसा है जो तब भड़कता है जब दूसरों के कामों से लोगों को हानि होती हो या उन्हें परमेश्वर से दूर किया जाता हो। यीशु ने देखा कि मन्दिर में होने वाला व्यापार लोगों को परमेश्वर से दूर कर रहा था और इसे बिल्कुल सहन नहीं किया जा सकता था!

मन्दिर के दृश्य की एक साधारण प्रासंगिकता का इससे सम्बन्ध है कि हम आराधना के समय इकट्ठे हुए अपने भाइयों और बहनों से कैसा व्यवहार करते हैं। मैं बहुत से लोगों, विशेषकर डॉक्टरों और व्यापारियों को जानता हूं, जिन्हें आराधना करने में कठिनाई आती है क्योंकि लोग आराधना से पहले और बाद में उनसे उनके काम से जुड़े प्रश्न पूछने लगते हैं। वे ''प्रार्थना के घर'' में आते हैं, परन्तु अपने आपको ''व्यापार के अड्डे'' पर पाते हैं। समय-समय पर हम सभी को कलीसिया की सभाओं में व्यापार को बाहर छोड़ने की बात पर ध्यान दिलाना आवश्यक है ताकि हर कोई बिना किसी रुकावट के आराधना कर सके।

मन्दिर में यीशु के व्यवहार की प्रासंगिकता हमारे जीवनों में अपने आप से यह पूछने के लिए है, ''क्या मुझे उन परिस्थितियों में क्रोध आता है जिनमें यीशु को आया था?'' हम ऐसी बातों में क्रोध करने की परीक्षा में पड़ सकते हैं जिन पर यीशु को क्रोध नहीं आया और फिर ऐसी समस्याओं पर शांत होने की परीक्षा में पड़ सकते हैं जिनके कारण यीशु ने मन्दिर को शुद्ध किया था। यीशु का क्रोध उपयुक्त, सकारात्मक और निष्कपट था। यह क्रोध दूसरों के लाभ के लिए उसके प्रेम के कारण था।

हम में से अधिकतर लोगों को क्रोध जल्दी आता है, कइयों के लिए हमारे जीवनों में यह बहुत ही गलत तरह का है। दूसरों के जीवन में क्रोध ईश्वरीय नहीं है। उदाहरण के लिए, हमें अपने देश में मतदान करने में आई नैतिक गिरावट पर क्रोध आता है? 1990 के अमेरिका के राष्ट्रीय चुनावों में 90 प्रतिशत समलैंगिकों ने वोट डाले जबकि यीशु के अनुयायी कहलाने वालों में से केवल 35 प्रतिशत लोगों ने ही मताधिकार का प्रयोग किया। ऐसी उदासीनता से पता चलता है कि ईश्वरीय क्रोध का होना आवश्यक है।

अविवाहित माता-पिता द्वारा त्यागे गए बच्चों के बारे में आप क्या कहते हैं? क्या उनकी दुर्दशा से आप दुखी होते हैं और आपको इतना क्रोध आता है कि आप उनकी सहायता के लिए कुछ करें? जेम्स डोब्सन ने हमारी संस्कृति में कुछ आशापूर्ण झुकावों की

बात की है। उसका कहना है कि वह ऐसे युवकों को देख रहा है जो बच्चों को त्यागने पर बहुत क्रोधित हैं क्योंकि उन्होंने स्वार्थी माता-पिता के हाथों बहुत कष्ट झेला है और अब वे पिछली पीढ़ी के मुकाबले तलाक के अधिक विरोधी हैं। क्रोध, उनमें एक सकारात्मक उद्देश्य के लिए काम कर रहा है।

किसी देश में व्याप्त शैतान की शक्ति के बारे में आप क्या कहते हैं ? जब आप युद्ध, बीमारी, भूख, और ज़रूरत की दूसरी चीज़ों के बारे में सुनते हैं तो क्या आपको इतना क्रोध आता है कि आप जाकर या उनकी सहायता करके जो वहां जा सकते हैं, उनकी मदद करें ? क्या आप आराम से बैठकर शैतान को अपने ढंग से संसार में काम करने की अनुमति दे सकते हैं ?

परमेश्वर करे कि हम क्रोध करने वाले अर्थात सामान्य, आत्मलीन (स्वार्थी), विफल नहीं, बल्कि संसार में व्याप्त पीड़ा के प्रति क्रोध करने वाले लोग बनें। काश वह हमें इतना क्रोधी बना दे कि हम प्रेम करना सीख जाएं!

हम पहचान की उसकी भावना को देखते हैं (2:16ख, 17)

पार्किंग में घूमते हुए किसी ठेले की टक्कर से डैंट पड़ी कार को देखना अलग बात है परन्तु यह पता चलने पर कि डैंट पड़ी कार मेरी है, बात बिल्कुल ही बदल जाती है! किसी के घर के सामने में फेंके गए खाली डिब्बों को देखना एक अलग बात है परन्तु यदि वह घर मेरा ही हो तो बात बिल्कुल अलग हो जाती है! पार्क में पड़े बैंच को खराब हुआ देखकर मुझे क्रोध आता है परन्तु यदि लकड़ी का बैंच जिसे किसी ने खराब कर दिया या तोड़ दिया है, वह मेरा हो तो क्रोध और भी बढ़ जाता है! जब कोई वस्तु हमारी न हो तो हम उसमें कम दिलचस्पी लेते हैं। परन्तु हमारी सम्पत्ति से छेड़छाड़ होने पर हम उसे गम्भीरता से लेते हैं।

जब यीशु ने देखा कि कैसे मन्दिर का दुरुपयोग हो रहा है, तो उसने इसे बड़े ही व्यक्तिगत रूप से लिया था। यीशु ने इसे, ''मेरे पिता का घर'' (2:16) कहा। उसके लिए यह यहूदियों के मन्दिर या यरूशलेम के किसी अन्य सार्वजनिक भवन से कहीं बढ़कर था क्योंकि यह उसके पिता का घर था। वहां होने वाली बातों से यीशु इतना व्याकुल हो गया था कि इससे उसके चेलों का ध्यान भजन 69 की आयत की ओर गया। जहां लिखा है कि ''मैं तेरे भवन के निमित्त जलते जलते भस्म हुआ'' (भजन संहिता 69:9)।''भस्म हुआ'' शब्द में ''निगलने'' या ''खा जाने'' का विचार मिलता है। मन्दिर को इतना अधिक दूषित किया जा रहा था कि इसे प्रसिद्ध मुहावरे के रूप में कहें तो यह ''यीशु को जीवित निगल रहा'' था। यीशु के लिए इस स्थान का महत्व किसी सार्वजनिक स्थान से कहीं अधिक था क्योंकि यह उसके पिता का घर था! यह तथ्य कि मन्दिर में होने वाली बातों को यीशु ने निजी रूप में लिया, एक और संकेत है कि यीशु अपने आपको क्या मानता था। व्यापारियों पर क्रोधित होते हुए कि यह ''मेरे पिता का घर'' है, यीशु यह भी कह रहा था कि ''मैं परमेश्वर का पुत्र हूं।'' यही वह दावा है जिस पर यूहन्ना हमें अपनी पुस्तक के अन्त में विश्वास दिलाना चाहता था (20:31)।

अपने आप से पूछिए, ''मैं परमेश्वर की बातों को कितना समझता हूं ?''; ''क्या मैं इस

संसार को 'अपने पिता के संसार' के रूप में देखता हूं?"; "क्या मैं कलीसिया की रक्षा 'अपने पिता की कलीसिया' के रूप में करता हूं?"; "क्या मैं सुसमाचार के प्रचारक के काम को 'अपने पिता के काम' के रूप में देखता हूं?" यीशु ने मन्दिर में यह दिखाया कि परमेश्वर की संतान किसी भी उस वस्तु के प्रति जो पिता के लिए महत्वपूर्ण है, उदासीन नहीं रह सकता।

हम मिशन की उसकी समझ को देखते हैं (2:18-22)

मन्दिर की धुन के यीशु के प्रदर्शन से हर कोई प्रसन्न नहीं था। वे हैरान थे कि उनकी दिनचर्या और कारोबार में विघ्न डालने का अधिकार उसे किसने दिया? इसलिए उन्होंने यीशु से पूछा, "तू जो यह करता है तो हमें कौन सा चिह्न दिखाता है?" (2:18)। यीशु ने उनके अनुरोध के अनुसार कोई आश्चर्यकर्म करने के बजाय उन्हें बताया कि यदि वे मन्दिर को ढहा दें तो वह उसे तीन दिन में फिर से बना देगा (2:19)। अपने आस-पास कई-कई टन के पत्थरों से बनी विशाल दीवारों के बारे में ऐसा दावा किसी पागल के प्रलाप जैसा लगता था। यूहन्ना ने समझाया कि यीशु अपनी देह की बात कर रहा था जिसे क्रूस पर "ढहाया" जाना था और परमेश्वर की सामर्थ से उसने तीसरे दिन फिर "जी उठना" था, (2:21)।

यीशु के क्रूसारोहण और पुनरुत्थान के बाद, चेलों को उसकी बातें याद आईं। क्रूसारोहण सबसे बड़ा "चिह्न" बन गया था। चिह्न होने के कारण चेलों द्वारा पवित्र शास्त्र और यीशु की बातों में "विश्वास" (2:22) करने से इसका उद्देश्य पूरा हो गया था।

सारांश

यूहन्ना रचित सुसमाचार को पढ़ने पर, हमें पता चलता है कि आरम्भ करने से पहले ही पुनरुत्थान के साथ सुसमाचार की यह पुस्तक पूरी हो जाती है। जिस कारण मुर्दों में से जी उठने के बाद केवल चेलों के दर्शन से ही हम पूरे सुसमाचार को पढ़ते हैं। आज जब हम पढ़ते हैं तो आत्मा का उद्देश्य यही होता है कि हम वैसे ही उसे ग्रहण करें जैसे पहली सदी में चेलों ने किया था अर्थात हम विश्वास करें कि यीशु ही मसीह अर्थात परमेश्वर का पुत्र है; और यह विश्वास करके उसके नाम से अनन्त जीवन पाएं!

पाद टिप्पणियां

[1]आश्चर्यकर्म से पांच हज़ार लोगों को भोजन कराना (यूहन्ना 6:1-15) और मसीह का क्रूसारोहण दोनों ही फसह के रोमांच के समय हुए। [2]पृष्ठ 55 पर मन्दिर का रेखाचित्र देखिए। [3]मत्ती 21:13; मरकुस 11:17; लूका 19:46. [4]मत्ती 5:21-24; इफिसियों 4:25-32. [5]मरकुस 3:5; इब्रानियों 4:15.